मध्यकालीन हिन्दी साहित्य

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य

सम्पादक
डॉ० घनश्याम भारती
डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० सीमा सिंह

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 09990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य

सम्पादक
डॉ० घनश्याम भारती, डॉ० ओकेन्द्र, डॉ० सीमा सिंह

पीयर रिव्यू टीम
डॉ० दीपक पाण्डेय, सहायक निदेशक, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली
आचार्य पं० पृथ्वीनाथ पाण्डेय, भाषाविद्-समीक्षक-मीडिया अध्ययन-विशेषज्ञ, प्रयागराज
डॉ० डी० आर० राहुल, प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दतिया, मध्यप्रदेश
डॉ० शिव प्रसाद शुक्ल, प्रोफेसर हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २०२३
ISBN 978-93-5782-886-4

प्रकाशक
जे०टी०एस० पब्लिकेशन्स
वी-५०८, गली नं०१७, विजय पार्क, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ०८५२७ ४६०२५२, ०११-२२६११२२३
E-Mail : jtspublications@gmail.com

मूल्य : ६६५.०० रूपये

आवरण : प्रतिभा शर्मा, दिल्ली

मुद्रक : तरूण ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Madhyakalin Hindi Sahitya Edited by
Dr. Ghanshyam Bharti, Dr. Okendra, Dr. Seema Singh

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन : वैश्विक मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य ५

१. मध्यकालीन साहित्य में सन्त साहित्य एवं भक्ति आन्दोलन
डॉ० सीमा सिंह, डॉ० ओकेन्द्र १९

२. मध्यकालीन साहित्य में राष्ट्रबोध
डॉ० अनिल कुमार २७

३. संत कबीर की वाणी में मानव-उत्थान की अभिव्यक्ति
चोवाराम यदु ४७

४. कालजयी सन्त कवि कबीर
डॉ० जी० शांति ५८

५. भक्तिकाल : हिंदी साहित्य का स्वर्णयुग
प्रा० कैलास काशिनाथ बच्छाव ६५

६. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की अवधारणा एवं प्रमुख प्रवृत्तियाँ
डॉ० उज्वला राणे ७३

७. संत दादू दयाल का जीवन-दर्शन
डॉ० सोहन लाल ७८

८. भक्तिकाल : हिन्दी साहित्य की अमूल्य-निधि
डॉ. मोहनी दुबे ८६

९. मध्यकालीन काव्य में विरह वेदना : घनानंद के संदर्भ में
डॉ० जी० वसंती ९३

१०. संत कवि कबीरदास की प्रासंगिकता
डॉ० शोभना कोक्काडन १०३

११. आत्मचिंतन से सार्वजनिक जागृति : कबीर की वाणी और उसकी सैद्धांतिकी
डॉ० अखिल कुमार गुप्ता १११

१२. भक्तिकालीन संत कबीरदास और उनका काव्य वैशिष्ट्य : एक परिचय
डॉ० संगीता ११९

१३. कबीर के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग
डॉ० ज़रीना सईद १२४

१४. संत कबीर के दोहों में व्यक्तित्व विकास
डॉ० रविंद्रनाथ माधव पाटील १३०

१०

संत कवि कबीरदास की प्रासंगिकता

–डॉ. शोभना कोक्काड़न

प्रस्तावना– हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है, तथा यह भक्ति आंदोलन का युग माना जाता है। भक्ति साहित्य में संत काव्य की विशेषताओं तथा उपलब्धियों विशेष महत्व के हैं कि उन्होंने जनभाषा को अपनाकर जनसेवा करने के लिए मानव के सच्चे प्रेमी बनकर समाज सुधारक के रूप में रचनाएँ की। यद्यपि हिन्दी भक्ति साहित्य में संत मत का उदय पहले हो चुका था फिर भी संत साहित्य का सूत्रपात कबीर के साहित्य से आरंभ होता है, इसलिए कबीर को संत साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है। मध्यकालीन भारत की धार्मिक स्थिति की ओर दृष्टि डाले तो मालूम पड़ेगा कि उस समय भारत की धार्मिक स्थिति अत्यंत अराजक थी। हिन्दू धर्म में विविध देवी देवताओं की पूजा का विधान फैल गया और वैष्णव, शाक्त, शैव, आदि संप्रदाय भी विकसित हुए, जिससे समाज में कई अनाचारों का तीव्र तांडव दिखाई पड़ा। सामाजिक मूल्य, अहिंसा, त्याग, सदाचार आदि का महत्व प्रतिदिन घटता गया। ऐसे वातावरण में मुसलमानों का आधिपत्य जम गया और उनका अत्याचार होता रहा। कबीर का उदय उस समय हुआ जब समाज अस्थिर राजनैतिक बर्बरता से जब जनता विचलित हो उठी थी, साधु, संत, मौला, मौलवी, धर्म के नाम पर मुग्ध जनता का खून चूस रहे थे। अंधविश्वास, बाह्य आडंबर, मूर्ति पूजा आदि बुराइयों से समाज जर्जरित हो उठा था। कबीर ने अपनी रचनाओं में भक्तिकालीन परिस्थितियों का सार भरकर रचना का निर्माण किया और इसके द्वारा समाज का उद्धार किया। सामाजिक दृष्टि से कबीर का महत्व सबसे अधिक इस बात में हैं कि तत्कालीन

Professor & Head Dept. of Hindi, Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed to be University) Coimbatore.

समाज में जो विषमता व्याप्त थी, उसका उन्होंने जड़ से उखाड़ने का प्रयास किया।

धार्मिक पाखंड एवं अंधविश्वास : संत कवि कबीरदास केवल किसी एक ही धर्म के माननेवाले नहीं थे, किसी धर्म के विरुद्ध विद्रोह करने वाले नहीं थे, ओर वे समाज और धर्म की दुर्दशा, अनाचार और कुरीति के विरुद्ध आवाज उठाते थे। इनके लिए हिन्दू मुस्लिम एकता और हिंदुओं के बीच जातीय समानता की आवश्यकता थी। इसलिए कबीरदास की आक्रोश की धार एक तरफ काजी मुल्लाओं की ओर थी दूसरी ओर हिंदुओं के कर्मकांडी पंडे पुरोहितों की तरफ। कबीर ने इन दोनों को चुनौती देते हुए भक्ति का एक सर्व स्वीकृत मार्ग निकाला, जिसमें धार्मिक एकता और जातीय समानता की भावना मुख्य थी और यह मार्ग था निर्गुण निराकार की उपासना का मार्ग।

धार्मिक दृष्टि से उन्होंने धर्म के नाम पर फैले हुए समस्त आडंबरों का तीव्र विरोध किया–वे चाहे जिस धर्म के हो। साथ ही उन्होने धर्म के शास्वत और सार्वभौमिक रूप पर बल दिया। महाभारत में शाश्वतर धर्म की परिभाषा दी गई है कि जिस प्रकार आचरण की अपेक्षा औरों से अपने प्रति भी जाय वैसा ही आचरण दूसरों के प्रति करना धर्म है। धर्म की यह परिभाषा संसार के किसी भी व्यक्ति के लिए मान्य होगी। कबीर भी लगभग ऐसी ही बात कहते हैं–

"सांई सेती साँच चलि, औरां सौ सुधभाई ।
भावै लांबे केस करि, भावै घुरडि मुड़ाई।।"[1]

हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए कबीरदास ने राम रहीम की एकता पर बल दिया। सांप्रदायिक विद्वेष को बढ़ावा देने के कारण उन्होंने दोनों को पथ भ्रष्ट कहा। धर्मों में व्याप्त पाखंड और अंधविसवास को दूर करने का प्रयास किया– इनके लिए न तो मंदिर मस्जिद जाने की जरूरत थी और न ही तीव्र व्रत, रोजा–नमाज जैसे क्रिया कलापों की। इनके कर्म कांडों के साथ पवित्रता का ऐसा भाव जुड़ा हुआ था, जो निम्न जातियों एवं दलित समुदाय के मार्ग में सबसे

बड़ी बाधा था। किसी नीच जाति के लिए मंदिर में जाना, पूजा हवन आदि करना, छापा तिलक लगाना, पुराण भागवत आदि करना निषिद्ध था। कबीरदास ने इन सभी धार्मिक बाह्याचारों को पाखंड और आडंबर घोषित किया।

कबीरदास ने पंडितों, पुरोहितों की हीं वृत्ति पर गहरा कटाक्ष करते हुए कहा था कि "ब्रह्मण जगत का गुरु बन सकता है लेकिन साधुओं का नहीं, क्योंकि वह चारों वेदों के अध्ययन में ही उलझ उलझ कर रह जाता है। संसार की वास्तविकता उससे दूर ही रहती है।

"ब्राह्मण गुर है जगत का साधू का गुर नाहि ।
उरझि पुरझि करि मरि रहयो चारीउ खेड़ा माहिं।।[2]

कबीर का मत है कि ईश्वर की प्राप्ती के लिए मंदिर या मस्जिद जाने की जरूरत नहीं, है। सच्चे ईश्वर भजन के लिए क्रिया कर्म और योग वैराग भी अपेक्षित नहीं। ईश्वर हमेशा हमारे नजदीक रहता हैं। वे कहते हैं –

'मौको कहाँ ढूंढे बंदे मैं तो तेरे पास में।
न मैं देवल, ण मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कोना क्रिया कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होय तो तुरत मिलि हौं, पल भर की तलास में।
कहै कबीर, सुनो भाई साधो, सब साँसों की सांस में।

परमात्मा सर्वत्र तथा अन्तर्मयी है। वह प्राणिमात्र में हमेशा विद्यमान रहता है। भगवान की प्राप्ति केवल आचरण की शुद्धि और अंतस के सहज प्रेम के बल पर हो सकती है।

ब्रह्म विचार – कबीर के अनुसार वर्णमाला में जितने भी अक्षर है,'र–म ही अपने आप में पूर्ण एवं महत्वपूर्ण अक्षर है। ईस्वर के अवतारी रूप को नकारते हुए उन्होने 'रामनाम'के महत्व पर बल दिया है। कबीर का अनुभव यही बताता है कि संसार में जो कुछ भी होता है, जो कुछ भी किया कराया जाता है, जो कुछ भी बनता बनाया जाता है, वह उस

अरूप ब्रह्म द्वारा ही संभव हो पाता है। वही सब करने में, कबीर को कबीर बनाने में भी समर्थ है।

"नां कछु किया न करहिंगेः न करतै, जोग सरीर।

जो कछु किया सु हरि किया, भया कबीर कबीर"3 कबीर क मत है कि जब सारा संसार एक ही पानी, एक ही पवन तथा एक ही ज्योति से बना है, जब सभी बर्तन एक ही मिट्टी से बने हैं, और उन सबका सृष्टि करता भी एक ही है, तब अन्य किसी प्रकार का भेद भाव मानना व्यर्थ और निरर्थक है।

"एक पवन एक ही पाणी, करी रसोई न्यारी जानी।
माती सूं माटी ले पोती, लागी कहौ, कहाँ घूं छोटी।।4

कबीर के विचार में ज्ञान दृ साधना के द्वारा जब व्यक्ति मायाजन्य विभेद एवं आवरण से छुटकारा पा लेता है, तब वह अंतर स्वतः ही समाप्त हो जाया करता है। इसी कारण कबीर अपने राम (ब्रह्म) को भी 'आत्माराम' कहकर पुकारते और अभिहित करते हुए कई बार दिखाई दे जाया करते हैं– जैसे

सार सुख पाहऐ रे। रंगहि खहु आतमां रांम ।।[5]

कबीर का कथन है कि जब साधक आत्म तत्व को पहचान कर मन को उलट लेता है, तो उसे त्रिगुणात्मक तापों से तो सहज छुटकारा मिल ही जाता है।, तब वह सब तरह के अन्य बंधनों से छुटकारा पाकर मुक्ति का पूर्ण सुख भी प्राप्त कर लिया करता है। कबीर आत्मा और ब्रह्म में द्वैत भाव नहीं मानते । जैसे जलाशय में पड़े हुए घड़े के भीतर दृबाहर पानी रहता है और जब घड़ा फूट जाता है तब उसके भीतर का पानी बाहर से पानी से मिल जाता है, उसी प्रकार शरीर के न रहने पर आत्मा परमात्मा एकमऐक हो जाते है।

कबीर के धर्म का केन्द्र बिन्दु ईश्वर था और कबीर ने उन्हें अलग–अलग नामों से संबोधित किया। उनकी राय में राम, रहीम,

गोविंद, अल्लाह, खुदा, हरि आदि भगवान ही थे। लेकिन कबीर के लिए 'साहेब' उनका पसंदीदा नाम था। उन्होंने कहा कि भगवान हर जगह हैं और उनका क्षेत्र असीमित है। भगवान शुद्ध, पवित्र, विद्यमान, बिना रूप, प्रकाश, अंतहीन और अविभाज्य थे। इसलिए भगवान सर्वशक्तिमान थे और उनकी पूजा केवल प्रेम और भक्ति से ही की जा सकती थी। कोई उसे किसी भी नाम से संबोधित करे, ईश्वर एक है और उसका कोई दूसरा नहीं है। इसलिए कबीर ने एकेश्वरवाद का प्रचार किया।

कबीर के विद्रोह और सामाजिक चेतना

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के निर्गुण संप्रदाय के संत कवियों का जीवन उस समय की सामाजिक समस्याओं से खुले तौर पर जुड़ा हुआ था, जिससे उनमें सामाजिक चेतना विविध रूपों में प्रकट होती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिससे उसमें समाज के भीतर होनेवाले नकारात्मक बातों के प्रति क्रोध, विक्षोभ और विद्रोह उत्पन्न होना स्वाभाविक है। समाज की उन्नति की अभिलाषा, समाज सुधार की भावना से जब वह आगे बढ़ते है, तो अपने मार्ग के प्रतिरोध को इकदम दूर करने को, विद्रोह का स्वर गूंज उठता है। कबीर एक मानवतावादी कवि थे, और क्रांरिकारी व्यक्तित्व के धनी थे। उनका क्रांतिपूर्ण व्यक्तित्व मानव के विकास के लिए बहुत जरूरी है, और वही विद्रोह भावना के रूप में मुखरित होता है। कबीर तो निर्गुण निराकार परब्रहम की उपासना करनेवाले भक्त थे, पर उनकी मंदनात्मक प्रवृत्ति उनकी आध्यात्मिक एवं सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त करने लायक है। उनका समस्त जीवन असत्य,अन्याय, अनाचार और मिथ्याडंबर के विरुद्ध लड़ते रहता है। यदि हमारा अंतःकारण शुद्ध नहीं है तो भगवान का ध्यान और भजन मिथ्या और व्यर्थ है। कबीर कहते हैं –

"काहे कू कीजे ध्यान जपना, जो मन नाहिं सुध अपना साँप काँ चली
छोड़े, विश नाहिं छादै,उदिक में एक ध्यान मोड़ो। [6]

कबीरदास के अपने युग की अधिकांश विकृतियों का आधार वर्णाश्रम धर्म की मान्यता थी, जिसके कारण अनेक सामाजिक कुरीतियों

को बढ़ावा मिल रहा था। समाज एक विशाल जन समुदाय वर्ण एवं जाती के आधार पर अत्यंत तिरस्कृत और अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश कर दिया गया था । इन सबके विरुद्ध कबीर ने साधारण निरीह जनता का पक्ष लेकर संघर्ष किया । इसके साथ ही उन्होंने इस व्यवस्था के बाहयाधार शास्त्र और शास्त्रीय दृपौराणिक कर्म कांड पर भी जमकर आघात किया और इसका जोरदार विरोध करते हुए कहा कि –

'तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आंखिन की देखी'[7]

इसप्रकार कबीर ने तत्कालीन कुलीनतावादी आडंवरों का खंडन करते हुए परंपरागत मानयताओं के सम्मुख एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत की हैं।

संसार की नश्वरता की हिदायत

कबीर ने संसार की नश्वरता तथा मानव जीवन की क्षण भंगुरता का वर्णन करते हुए मानव जाती को हिदायत दी है कि मानव संसार की आशाओं में, संसार के मायाजाल में फँसकर भगवान का स्मरण करना भूल जाता है। कबीर उद्‌बोधन देते हैं कि मनुष्य तू संसार की विषय वासनाओं को छोड़कर हरि की भक्ति में लग जा, क्यों कि यह मानव जन्म बड़ी कठिनाई से प्राप्त हुआ है और दुबारा यह प्राप्त नहीं हो पा–वेगा। संसार में माया के आकर्षण में लिप्त होकर जीव प्रभु को भूल जाता है, किन्तु जिस संसार के पीछे उसने अपना धर्म नष्ट कर दिया हैं, वह मर कर भी उसके सत्य को जान नहीं सकता। यह शरीर एक वन के समान है जिसके नाश के लिए कर्मों की कुल्हाड़ी है। कर्मों की कुल्हाड़ी शरीर को काट रही है। स्वार्थी मनुष्य इन सब को भूलकर माया में फंस जाता है। यदि वह निष्काम भाव से काम करेगा, तो उसको मुक्त होने में भी देर नहीं होगा। यह संसार निद्रा में नजर आनेवाले एक स्वप्न के समान हैं, जो खनिक हैं। कवीरदास इन सभी खनिक बंधनों से मोह न करने की चेतावनी देते हैं–

"कबीर कहा गरबियौ, इस जीवन की आस।
टेसू फूले दैवत चारी, खँखर भये पलास"।। [8]

कबीर कहते हैं प्रभु के नाम का हर प्रकार से स्मरण करना ही मानव जीवन का सार तत्व और सफलता का कार्न है। नाम स्मरण के अतिरिक्त संसार में और जो कुछ भी है, वह सिवा झंझट के और कुछ भी नहीं है। उनके पीछे भागकर व्यक्ति जन्म मरण के बंधन में ही बांधता है। मैं ने जीवन के आरंभ से लेयकर संत तक हर प्रकार से शोध विचार कर देख लिया है। वह सार तत्व और शोध का परिणाम यही है कि राम नाम के स्मरण के बिना शेष जो कुछ भी है, वह सब काल रूप या मरणशील ही है।

कबीर सुमिन सार है, और सकल जंजाल ।
आदि अंत सब सोधिया, दूजा देखौं काल।।

कबीर झूठे, नाशवान शरीर पर गर्व करने वाले मनुष्य को चेतावनी देते हुए कहते हैं–दूध, घी, खांड आदि स्वादिष्ट पदार्थ खाकर मनुष्य इस शरीर का पालन पोषण आजीवन करता रहता है, पर मर जाने पर उस प्रिय लगनेवाले शरीर को भी घर से बाहर याने श्मशान घाट पर ले जाकर जला दिया जाता है। जीते जी मनुष्य अपने जिस सिर पर सजा संवार कर पगड़ी बांधा करता है, मर जाने पर उसी सिर को कौए आकार अपनी चोंच से नोचने लगते हैं । कबीर जी कहते हैं कि यमराज का डांडा सिर पर बज रहा है, पर मनुष्य फिर भी नहीं जागता।[9]

निष्कर्ष :– मध्यकालीन हिन्दी भक्ति साहित्य में सन्त काव्य धारा को जो महत्वपूर्ण स्थान मिला है, वह उसकी धार्मिक, सामाजिक तथा संस्कृतिक चेतना के मिश्रण के कारण ही है। संतों ने अपने समय के समाज के लिए उसकी घृणित रूढ़ियाँ, अंध विश्वासों और पाखंडों को दूर कर उनके सामने कुछ उपयोगी नए आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। कबीर की विचार धारा अनेक समस्याओं को हल करने में सहायक है। कबीर की महानता इस बात में है कि उन्होंने भारत की बहू संख्यक शोषित उत्पीड़ित जनता की मुक्ति के संघर्ष को आगे बढ़ाया, उसमें सक्रिय भागीदार बनकर। उन्हों ने वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हुए जातिपांत, ऊंच नीच, छुआ छूत

की भावना को निषेध करते हुए मानव मात्र की जो संदेश दिया था, वह आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रथ :–

१. कबीरवाणी संग्रह, डॉ.पारस नाथ तिवारी, 1978, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ 149
२. कबीर एवं तुलसी की सामाजिक दृष्टि का तुलनामक अध्ययन, सरिता राय, 1993, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 45
३. कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व, श्रीशरण, 2002, आधुनिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 101
४. कबीर ग्रंथावली श्यामसुंदर दास, पाँचवाँ सं पृ 44
५. कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व, श्रीशरण, 2002, आधुनिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ104
६. मध्यकालीन भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता, डॉ. वी.एन फिलिप, 2000, जवाहर पुस्तकालय, मधुरा, पृ 87
७. कबीर एवं तुलसी की सामाजिक दृष्टि का तुलनात्मक अध्ययन, पृ 60
८. कबीरदास और शिशुनाल शरीफ का तुलनात्मक अध्ययन,शाकिरा खानम, 2013, अमन प्रकाशन, कानपूर, पृ 102
९. कबीर व्यक्तित्व और कृतित्व 189